ੴ ਸਤਿਗੁਰ ਪ੍ਰਸਾਦਿ ॥

81

तेग बहादुर सी क्रिया करी न किनहू आन

अनुपम बलिदान

गुरु नानक मिशन
पटियाला

१५ पैसे

अनुपम बलिदान

बलिदान, किसी सत्य के अस्तित्व का प्रमाण होता है। बलिदानी का संबल कोई न कोई विश्वास होता है, जिस की रक्षा के लिए वह अपना शरीर तक त्याग देता है; अपने विश्वास की शक्ति में वह कोई न्यूनता नहीं आने देता। किसी व्यक्ति का बलिदान कितना महान् है, इस का मापदण्ड वह विश्वास होता है जिसके लिये उसने अपने प्राण न्यौछावर किये होते हैं। कुछ लोग किसी मांग के लिये हठ करते हैं, और अपने हठ को अन्त तक निबाहने की प्रक्रिया में अपने प्राण त्याग देते हैं। उन्हें हम हठी तो कह सकते हैं, पर बलिदानी नहीं कह सकते। आत्म-हत्या भी किसी हठ का परिणाम् होती है। गुरमत ऐसे हठ को मान्यता नहीं देता। सत्य में आस्था, लोक-कल्याण अथवा धर्म की रक्षा और अधर्म के नाश के लिये अपने को बली कर देना गुरु-घर में 'बलिदान' के रूप में जानी जाती है। तथापि यह बलिदान कितना महान है—स्वयं बलिदानी का अपना जीवन ही इस का निर्णायिक होता है। सेवा-युक्त, भक्ति-सम्पन्न और परोपकारी जीवन के बलिदान से ऐसी ज्वाला प्रज्वलित होती है जो जुलम, भ्रष्टाचार और बर्बरता का उन्मूलन करती है तथा सत्य और धर्म की स्थापना करतीहै। ऐसा ही बलिदान था—श्री गुरु तेग बहादुर साहिब का, जिसकापरिचय इस ट्रैक्ट के माध्यम से करवाया जा रहा है। यह बलिदान अपने आप में अनुपम है, इसीलिये सतगुरु गोबिन्द सिंह जी ने कहा था—

"तेग बहादुर सी क्रिया करी न किनहूं आन।"

इस बलिदान का तीन-सौवां वर्ष सन् १९७५ है। गुरु नानक मिशन ने इसकी तैयारी अभी से आरम्भ कर दी है, और यह ट्रैक्ट इस सिलसिले में एक सेवा-कार्य है।

मंत्री, गुरु नानक मिशन।

'गुरू तेगबहादुर सिमरीए'

श्री गुरू तेगबहादुर साहब की शहीदी इतनी महान है कि आपके जीवन के सब और पक्ष जो कम महान नहीं वे इसके पीछे छिप जाते हैं और हम उनको केवल एक अद्वितीय शहीद होने के दृष्टिकोण से देखते हैं। निस्सन्देह सम्पूर्ण विश्व के इतिहास में सत्-गुरू तेगबहादुर का बलिदान अपना उदाहरण आप ही है।

जिस समय की यह घटना है उस समय जनेऊ और माथे का तिलक हिन्दू धर्म के प्रत्यक्ष लक्षण थे और किसी व्यक्ति का हिन्दू धर्म में प्रवेश का मुख्य साधन जनेऊ पहनना था। श्री गुरू नानक देव जी को भी नौ वर्ष की आयु में इसे पहनने के लिए कहा गया था, परन्तु आपने कुल-पुरोहित को यह सूचना दी थी कि जो यदि

'दया कपाह संतोख सूत जत गंढी सत वट्ट ॥
इह जनेऊ जीय का हई त पांडे घत्त ॥ (आसा)

नहीं तो चार कौड़ियों से खरीदे हुए धागे के जनेऊ का कोई लाभ नहीं।

चऊ कड़ मुल अणाया बह चौके पाया,
सिखा कत्ति चढ़ाइया गुरू ब्राह्मण थीया,
उह मुआ उह झड़ पया वे तगा गया।

(आसा)

परन्तु समय आया जब हिन्दुओं के जनेऊ उतारे जाने का काम आरम्भ हुआ और जो हिन्दू इसे उतारने से इनकार करता उसे तलवार के घाट उतार दिया जाता तो काश्मीर के ब्राह्मणों ने

जो उस समय समस्त हिन्दू जाति के मुखिया माने जाते थे, सत्गुरू तेगबहादुर जी के दरबार में उपस्थित होकर पुकार की कि हमारे तिलक और जनेऊ की रक्षा की जाय। इस पुकार को सुनकर वही गुरू नानक अपने नवे स्वरूप में जिस जनेऊ को उन्होंने पहनने से इनकार किया था उसे बचाने के लिए तत्पर हो गए और उसकी रक्षा के लिए अपने आप को बलिदान कर दिया। श्री गुरू गोबिन्द-सिंह जी अपनी बाणी में इसे इस प्रकार कहते हैं :-

तिलक जंजू राखा प्रभु ताका- कीनो बड़ो कलु महि साका।
साधन हेतु इति जिन करी- सीस दिया पर सी न उचरी।
धर्म हेतु साका जिन कीया- सीस दिया पर सिरर न दिया।
(बचित्र नाटक)

अर्थात प्रभु (सत्गुरू तेग बहादुर जी) ने तिलक और जनेऊ के रक्षक बन कर हिन्दू धर्म जिसके प्रत्यक्ष लक्षण तिलक और जनेऊ थे, उसके लिए अपना शीश बिना किसी प्रकार की हिचकिचाहट के कटवा दिया, परन्तु उसका सिदक नहीं छोड़ा।

यह सत्य है कि गुरू विचार धारा तिलक और जनेऊ को धारण करने तथा अन्य ब्राह्मण-क्रियाओं मूर्ति पूजा आदि को स्वीकार नहीं कराती। सत्गुरू तेगबहादुर जी को यह भली भांति ज्ञात था कि ब्राह्मण-वर्ग आरम्भ से ही गुरू विचार धारा का विरोध करता आ रहा था। श्री गुरू अमरदास जी के समय से इन्होंने अकबर बादशाह से शिकायत की थी कि गुरु ने पुरातन वर्ण-मर्यादा तोड़ दी है। ऊंच-नीच तथा ब्राह्मण, क्षत्रिय वैश्व और शूद्र सब को एक स्थान पर बिठाकर भोजन पान करते हैं। वे धर्म-उपदेश भी देव-भाषा सस्कृत के स्थान में प्रचलित लोक-भाषा में देते हैं और इस प्रकार शताब्दियों की

पुरानी धर्म-मर्यादा भंग हो रही है। जब श्री पंचम पातशाह जी ने गुरू ग्रंथ साहिब का सम्पादन किया उस समय भी उन्होंने यह चुगली की कि गुरू जी ने पुरातन देव-वाणी तथा वेद-शास्त्रों की प्रतिस्प्रधा में अपना ग्रंथ रचकर उसमें अवतारों और पैगम्बरों की निन्दा की है। ऐसी शिकायतें होने पर ही श्री हरिराय साहिब के समय रामराय जी को और बाद में श्री हरिकृष्ण साहिब को दिल्ली जाने की आवश्यकता हुई थी। यह सब तथा इसी प्रकार की अन्य अनेक बातें गुरू तेगबहादुर साहिब जी के समक्ष थीं। इस प्रकार न तो सिद्धान्त ही और ना ऐतिहासिक घटनाएं ही इसके अनुकूल थीं कि सत्गुरू ब्राह्मणों की सहायता के लिए हाथ बढ़ाते। परन्तु सतगुरु का यह बचन है कि कोई कितना ही अपराधी क्यों न हो।

'जे गुरू की शरण फिरि उह आवै ता
पिछले अवगुण बखश लया।

(गउड़ी महला ४)

गुरू तेग बहादुर जी हृदय की कोमलता और क्षमा कर देने के स्वभाव में इतने प्रबल थे कि वे बड़े से बड़े दुष्कृत को भी क्षमा कर देते थे। इतना ही नहीं वरन् किए हुए अपराध का दण्ड देना भी आप पाप समझते थे। बकाले में गुरू-गद्दी पर विराजमान हो जाने के पश्चात् आपके सगे भतीजे धीरमल और उसके साथियों ने गुरू घर पर आक्रमण कर दिया और सारा सामान लूट लिया। इसके अतिरिक्त धीरमल के शीयां नामक सेवक ने उसका संकेत पाकर गुरू तेगबहादुर जी पर गोली चला दी जो आपके कन्धे को स्पर्श करती हुई निकल गई। जब गुरू के सिक्खों को इस बात का पता लगा तब उन्होंने धीरमल आदि

का पीछा किया और उनको भगाकर गुरू घर का लूटा हुआ माल वापस ले लिया। धीरमल को अत्यधिक सामान सहित तथा गुरू ग्रंथ साहिब की वास्तविक बीड़ सहित जो धीरमल के पास थी ले आये। पता लगने पर गुरूजी ने बीड़ सहित धीरमल का सारा सामान उसे वापस कर देने का हुक्म दे दिया। गुरू के सिक्ख धीरमल का सारा सामान तो उसी समय वापस कर आये परन्तु उन्होंने बीड़ को रख लिया क्योंकि वे समझते थे कि वास्तविक ग्रंथ साहिब की बीड़ गुरू का वास्तविक धन है जिस पर धीरमल ने अनुचित रूप से अपना अधिकार जमाया हुआ है। इसके कुछ समय पश्चात जब गुरु जी ने अपने परिवार तथा सामान सहित बकाले से कीरतपुर चले जाने की तैयारी की तब आपको पता चला कि बीड़ उनके ही पास है। इस पर गुरू जी ने सिक्खों को विशेष चेतावनी दी और इस बीड़ को दरिया के किनारे सम्भाल कर रख दिया। उन्होंने धीरमल को इसकी सूचना दे दी जिसे सुन कर वह बीड़ को ले गया।

इसी प्रकार जब सतगुरू जी गुरू के चक्क (अमृतसर) श्री श्री हरिमन्दिर साहिब के दर्शनों के लिए वहां पहूंचे तो पुजारियों ने आगे से द्वार बन्द कर लिये। श्री हरिमन्दिर साहब के पहले ग्रंथी साहब बुढ़ा जी के बाद दूसरे ग्रंथी भाई गुरदास जी नियुक्त किये गये थे। उनके परलोक प्रस्थान करने के पश्चात् यह पवित्र स्थान पृथी चन्द के वंश के हाथ आ गया था। उनको यह भय था कि यदि गुरू तेगबहादुर जी यहां पर आ गए तो सम्भवतः गुरू के सिक्ख इस पर अपना अधिकार कर लेंगे। इसलिये उन्होंने गुरू तेग बहादुर जी के आने की सूचना पाकर द्वार बन्द कर दिए थे। सतगुरू जी के साथ आए हुए सिक्ख यह चाहते थे कि दरवाजों को तोड़ कर भीतर प्रवेश करें। उस समय सिक्ख ऐसा करने के लिए समर्थ भी थे। परन्तु गुरू तेगबहादुर जी के अत्यन्त कोमल

हृदय ने ऐसी बात करने की अनुमति न दी और गुरू जी दर्शन किए बिना ही वापस वेरका गांव को चल दिये।

श्री गुरू तेग बहादुर जी बकाले को छोड़ कर कीरतपुर चले गए और इसके पश्चात् शीघ्र ही आनन्दपुर साहब की नई बस्ती स्थापित करने तथा पूर्णरूप से वहां रहने का निश्चय किया। ऐसा करने में भी यह रहस्य था कि यद्यपि आपके मन में किसी के प्रति वैर-भावना नहीं थी फिर भी आप यह समझते थे कि संबंध में रहने के साथ धीरमल और उसके साथियों की ईर्ष्या उनके मन को सदैव पीड़ा पहुंचाती रहेगी और इसलिए उनसे दूर चले जाने पर उन्हें मानसिक सुख और शान्ति प्राप्त होंगे।

ऐसी ही अनेक घटनाएं हैं जिन से यह स्पष्ट होता है कि सत्गुरू तेगबहादुर जी का हृदय कितना कोमल, निर्मल, बैर-भावना रहित तथा क्षमा प्रदान करने वाला था। धर्म की रक्षा के प्रश्न को लेकर आने वाले काश्मीरी ब्राह्मणों की भुजा पकड़ने से सत्-गुरू जी के दयापूर्ण उदार हृदय का परिचय मिलता है। क्षमा प्रदान करने के साथ-साथ आपका हृदय अत्यन्त दया-भाव से पूर्ण था। आपके विशाल हृदय में दुखियों के कष्ट को निवारण करने की उमंग थी। सम्पूर्ण ब्राह्मण जाति की रक्षा परहित की भावना आपकी नस नस में समाई हुई थी। करुणा-पूर्ण हृदय की जिस भावना से प्रेरित होकर सत्गुरू नानक देव जी ने दुखियों के असह्य दुख को देख कर द्रवित हृदय से करता पुरख को शिखवा देने में कोई संकोच नहीं किया था।

'एती मार पई करलाणे तैंकी दरद न आया।
करता तूं सभना का सोई

(आसा महला १)

पीड़ित, तड़पते और दुखियों के दु.ख को हरण करने के साधन किए थे। वैसे ही हाहाकार करते और रोते हुए ब्राह्मणों को देख कर उनकी पीड़ा ने सत्गुरू तेगबहादुर जी के करुणा पूर्ण हृदय को दृवित किया था आपका यह भी दृढ़ विश्वास था कि सत्य को ग्रहण करने की भावना हर मनुष्य की अपनी अपनी है और यही उसका धर्म है। हर मनुष्य को यह अधिकार है कि अपनी भावना के अनुसार वह अपने धम में दृढ़ रहे। किसी को यह अधिकार नहीं कि वह किसी दूसरे को डरा कर या धमका कर उसकी भावना या विश्वास के साथ खेले। गुरू जी के अनुसार एक अच्छे और बुद्धिमान व्यक्ति की परीक्षा की कसौटी यही थी कि वह न किसी को डराए और न स्वयं किसी से डरे।

भय काहू को दे नह नह भय मानत आन ।
कहो नानक सुन रे मना ज्ञानी ताहि बखान ।

(सलोक महला ६)

जब आपने देखा कि एक बलवान मनुष्य दूसरे निर्बल मनुष्य के विश्वास के साथ खेलता हैं और उसकी धर्म-भावना को कुचल देना चाहता है तब उस दुर्बल व्यक्ति का विश्वास और भावना चाहे सही थे या गलत थे आपने बलवान व्यक्ति के ऐसे अनुचित व्यवहार को असह्य समझ कर उसके विपरीत आवाज उठाने का निश्चय किया। जिस सत्याग्रह की नीति को बीसवीं शताब्दी के भारतवर्ष ने अपनाया उसकी नींव सत्गुरू जी ने आज से तीन सौ वर्ष पूर्व रखी थी और एक पक्के सत्याग्रही के रूप में असहाय हिन्दू जाति के धर्म की रक्षा के लिए अपने आपको बलिदान कर देने का निश्चय किया था। इस निर्णय के अन्तर्गत सत्गुरू तेगबहादुर जी के हृदय की कोमलता, असहाय और दुखी जनता

के प्रति सहानुभूति और प्रत्येक व्यक्ति को अपने धर्म में विश्वास रखने की पूर्ण स्वतन्त्रता रखने की भावना काम कर रही थी। आपने काश्मीरी ब्राह्मणों को पूर्ण विश्वांस दिलाया और उनको यह स्पष्ट शब्दों में कह दिया कि वे बादशाह को यह विश्वास दिला दें कि यदि गुरू तेगवहादुर को मुसलमान बना लिया जाय तब देश की समस्त जनता दीन इस्लाम को ग्रहण कर लेगी। हकूमत के लिए यह बात अत्यन्त उत्साहवर्धक थी कि केवल एक गुरू तेगबहादुर को दीनदार बना लेने से सारी हिन्दू जनता मुसलमान बन जायेगी। दूसरी और सतुगुरु जी का सारा भार अपने ऊपर ले लेने का उद्देश्य यह था कि हकूमत को ऐसा निश्चय हो जाने पर वह जनता के प्रति कठोरता पूर्ण व्यवहार करने से हट जाएगी और अपनी सारी शक्ति गुरू जी को इस्लाम धर्म के भीतर लाने में लगायेंगी और इस प्रकार हिन्दू जनता को कुछ समय के लिए चैन का सांस मिलेगा।

काश्मीरी ब्राह्मणों ने सतुगुरू जी के सुझाव को मान लिया और बादशाह को इस से सूचित कर दिया। काश्मीरी ब्राह्मणों का यह आचरण इस बात को प्रमाणित करता है कि उस समय की त्रस्त हिन्दू जनता के मुखिओं का गुरू जी पर कितना गहरा विश्वास था। ऐसे विश्वास के बिना वे करोड़ों हिन्दुओं के धर्म को इतने बड़े संकट (Risk) में कभी न डालते और यह वात कभी न मानते कि यदि गुरू जी मुसलमान हो जायेंगे, तो वे भी मुसलमान हो जाएंगे। इससे पूर्णतः सिद्ध होता है कि आज से तीन सौ वर्ष पहले का भारतवासी पूर्ण रूप से गुरू घर पर कितना अटल विश्वास रखता था।

गुरू तेगबहादुर जी को कोई भूला नहीं था। हिन्दू सभ्यता और

संस्कृति की रक्षा का भार अपने कन्धों पर लेकर वे कितना बड़ा संकट अपने सिर पर ले रहे थे। उनके पिता सत्गुरू हर-गोबिन्द साहब जिनको बादशाह जहांगीर के आदेश से ग्वालियर के किले के भीतर कैद में रखा गया था और जिनको शाह-जहां के समय में शाही फौजों के साथ लड़ना पड़ा था, उनकी सारी जीवन-कहानी श्री गुरू तेग बहादुर जी के सामने थी। वे यह भी भली प्रकार जानते थे कि उनके दादा सत्गुरू अर्जुनदेव जी को अकथनीय तथा असह्य कष्ट देकर शहीद कर दिया था। जब कि उन्होंने तत्कालीन हकूमत के विरुद्ध एक शब्द भी मुंह से नहीं निकाला था। फिर सारी हिन्दू जाति की रक्षा के लिए सारा भार अपने सिर पर लेकर ऐसी सरकार को चुनौती देना कोई साधारण बात नहीं थी। जिस हिन्दू जाति के अस्तित्व को हकूमत भारत-भूमि से समाप्त कर देने पर तुली हुई थी, ऐसी हिन्दू जाति के प्रतिनिधि के रूप में मुगल साम्राज्य का सामना करना कोई सरल काम नहीं था। यह सब कुछ जानते हुये भी गुरू जी ने सारा दायित्व अपने ऊपर ले लिया।

दूसरी ओर आपको यह बात भी पूर्णरूप से विदित थी कि आप अपने पीछे एक सात वर्ष के बालक को छोड़ कर जा रहे थे। सभी सम्बन्धी जिसके शत्रु थे। जिस शत्रुता के कारण आपने पहले बकाला और फिर कीरतपुर को त्याग दिया था। जिस बालक ने अभी तक होश नहीं सम्भाला था। जिसकी माता मात गुजरी और बूढ़ी दादी मात नानकी ने अभी तक दुलार का रसास्वादन भी नहीं किया था- जिसकी जीवन-कली अभी तक पूर्ण रूप से खिलने नहीं पायी थी।

फिर गुरू तेगबहादुर जी के सामने सब से बड़ी चिन्ताजनक

बात यह थी कि जिस गुरू-गद्दी की स्वीकृति आप के लिए हुई थी और जिस पौधे को दो सौ वर्ष के भीतर तैयार किया गया था, उसको शिखर तक ले जाना अभी शेष था । इस महान कार्य का दायित्व केवल आप पर ही था। अभी दो सौ वर्ष पूरे नहीं हुए थे जब यह बात भली प्रकार विदित हो चुकी थी कि श्री तेगबहादुर जी के व्यक्तित्व के अतिरिक्त अन्य कोई ऐसा योग्य व्यक्तित्व सारे समाज के भीतर नहीं है कि जो गुरू नानक की गद्दी सम्भाल सके । बकाले के भीतर प्रसिद्ध बाईस गुरू यह सिद्ध करने में असफल रहे कि वे गुरू गद्दी के योग्य थे । तब जिस गुरू-गद्दी की सुरक्षा आपको सौंपी गई थी और जिस सिक्खी को जीवित रखना केवल आपके एक मात्र व्यक्तित्व पर निर्भर था उसके दायित्व को सत्गुरू ने हिन्दू धर्म की रक्षा पर न्यौछावर कर दिया अर्थात अपनी विचारधारा और अपने धर्म को संकट में डाल कर गुरू तेगबहादुर जी ने शरणागत के धर्म की रक्षा का बीड़ा उठाया और अपने शरीर का बलिदान दिया। इससे बढ़कर और बलिदान क्या हो सकता है। इसीलिए सत्गुरू गोबिन्द सिंह जी ने लिखा है :—

तेगबहादुर सी क्रिया करी, न किनहु आन",

अर्थात् अपने धर्म को संकट में डाल कर दूसरे के धर्म की रक्षा करने की जो कृपा श्री तेगबहादुर जी ने की, ऐसी कभी किसी और ने नहीं की। इसीलिए आपकी शहीदी अद्वितीय और प्रसंशनीय है।

परन्तु इसके पीछे और रहस्य भी हैं। उन्हें जानने के लिए हमें आपके जीवन की पृष्ठभूमि पर दृष्टिपात करना चाहिए । श्री गुरू तेगबहादुर जी गुरू हरगोबिन्द साहब के सब से छोटे

साहबजादे थे । छोटी आयु से ही आपका रहन-सहन और स्वभाव दिव्य था। आपके भीतर किसी रस-स्वाद, भोग और प्राप्ति की इच्छा नहीं थी। किसी प्रकार मान-प्रतिष्ठा प्राप्ति की इच्छा भी नहीं थी । ऐसे स्वभाव के कारण ही आप लोगों द्वारा त्यागमल्ल करके सम्बोधित किये जाते थे। जब दिल्ली में श्री गुरु हरिकृष्ण साहब ने परलोक सिधारने के बाद गुरू गद्दी का संकेत बाबा बकाले कह कर दे दिया तब यह समाचार मिलने पर गुरू रामदास साहब के परिवार के बहुत से बड़े साहबजादे बकाले के अंदर गुरू गद्दी की चौकड़ी लगा बैठे। उस समय भी श्री तेगबहादुर जी ने किसी ऐसी इच्छा को प्रकट नहीं किया, बल्कि अपने स्मरण-साधन के भौंरे के अंदर ही छिप कर बैठे रहे।

इस समय बकाले के अन्दर सम्बन्धियों में केवल आप ही थे जो गुरू हरिकृष्ण साहब के बाबा जी थे और जिनके ऊपर बाबा बकाले वाला सत्गुरू जी का संकेत ठीक बैठता था। फिर धीरमल को सारे सामान सहित श्री गुरू ग्रंथ साहब जी को वापस दे देना भी आपकी त्याग वृत्ति का सूचक था । गुरू-गद्दी को सुशोभित करने के समय के भीतर अपके द्वारा रचित ११५ शब्दों के श्लोकों में आपकी ऐसी वृत्ति स्पष्ट होती है। अनेक ऐतिहासिक उदाहरणों से यह सिद्ध होता है कि आप लौकिक बन्धनों से सर्वथा मुक्त थे और आपका जीवन महान और त्यागमय था । आपकी शहीदी अथवा परोपकार के लिए शरीर-त्याग का कर्तव्य भी इसीलिए है। इस प्रकार अपने शरीर का बलिदान दे देना आपके जीवन की एक सहज क्रिया बन जाती है जिसमें किसी प्रकार के सुख-दुख, हर्ष-शोक अथवा जीवन-मरण, का विचार

ही नहीं है। जहां मोह नहीं, त्याग है वहां आशा भीतर रहे निराशा' की सहज साक्षी बन जाया करती है जिसको जीवन–मुक्त 'जीव तया एहूं मरइयें' कहते हैं! वहां मरना भी नहीं होता और जीवन की इच्छा भी नहीं होती। वह धर्मशाला में रात्रि व्यतीत करने के लिए आये मुसाफिर की "निग्राई उषेरसार परना झाड़ तुरता है।" उसे कुछ ले चलने की इच्छा नहीं होती। उसे मालूम होता है कि अगला दिन और अगली रात उसने किसी और स्थान पर व्यतीत करनी है जहां उसके लिए आवश्यक प्रबन्ध किया हुआ है। उसकी त्याग वृत्ति के कारण उसे भरा हुआ स्थान छोड़ने का कष्ट अनुभव ही नहीं होंता क्योंकि उसके भीतर मोह नहीं होता।

"सहजे जागरण, सहजे सोए
सहेजे होता, जाए सु होए।"

(गउड़ी महला ५)

गुरू तेगबहादुर साहब के त्याग भावना से प्रभावित जीवन ने उनको सहज अवस्था के भीतर टिका दिया था। उनका सहज इस अवस्था का था- उनका सहज इस स्थिति का था।

जो होआ होवत सो जानै,
प्रभु अपने का हुकम पछानै।

इसलिए पीड़ितों का दुख बांटने और धर्म की स्वतन्त्रता को बहाल कराने का निर्णय कोई सामयिक अथवा संयोगवश होने वाली बात नहीं थी। इसके पीछे तो गुरू जी के जीवन भर की महान त्याग वृत्ति और आपके जीवन की सहज स्थिति काम

कर रही थी। इस विषय पर एक और बात जो गुरू जी ने अनुभव की यह थी कि ब्राह्मण चाहते थे कि धर्म भी बच जाए और जीवन भी बच जाए। गुरू जी का यह विश्वास था कि हर वस्तु अपना मूल्य मांगती है। यदि तुम उसका मूल्य चुकाने के लिए तैयार नहीं तब तुम उसे प्राप्त नहीं कर सकते। हर वाणिज्य-व्यापार राशि माँगता है। यदि तुम राशि लगाओगे तब ही उसमें लाभ प्राप्त करने की आशा कर सकते हो। वह समूची हिन्दू सभ्यता और हिन्दू धर्म की रक्षा का प्रश्न था। ५-६ सौ वर्षों से यह अपना धर्म हारते गवांते आ रहे थे। यदि कभी कोंई व्यक्ति अपने धर्म के लिए प्राण दे भी देता तो यह वैयक्तिक रूप से स्वैधर्म रक्षा के लिए साधन होता। संगठित रूप से हिन्दू धर्म की रक्षा का कोई साधन नहीं था। इसी कारण सारी सभ्यता रसातल को जा चुकी थी। जब ब्राह्मण सत्गुरू जी के पास आये तब गुरू जी ने स्पष्ट कहा कि धर्म-रक्षा बलिदान दिये बिना नहीं हो सकती और बलिदान भी शुद्ध जीवन वाले उच्च कोटि के व्यक्ति का होना चाहिए। ब्राह्मण यह सुन कर चुप हो गए। वे सारी हिन्दू सभ्यता का प्रतिनिधित्व करते थे, धार्मिक जीवन व्यतीत करते थे और धामिक जीवन वाले प्रमुख व्यक्ति ही थे। गुरु की शरण में आने वाले यह ब्राह्मण सामान्य कोटि के व्यक्ति नहीं थे। फ़िर भी इनमें किसी को यह साहस न हुआ जिस सभ्यता का वे प्रतिनिधित्व करते थे उसकी धर्म-रक्षा के लिए आत्म-बलिदान की पेशकश कर सकें और सभ्यता एवं धर्म-रक्षा का भार अपने कन्धों पर ले सकें।

श्री गुरू तेगबहादुर जी ने मुगल साम्राज्य के सामने सम्पूर्ण हिन्दू जाति का पक्ष लेने और यदि आवश्यकता पड़े तो उनकी

धर्म–रक्षा के लिए अपना बलिदान करने की घोषणा की। ब्राह्मणों की ओर से बादशाह औरंगजेब को यह सूचना दे दी गई कि सम्पूर्ण भारतीय हिन्दू जाति का प्रतिनिधित्व गुरू जी करेंगे। तब गुरू जी ने तैयारी की और सन् १६७३ की वर्षा-ऋतु में आप आनंदपुर साहब से दिल्ली की ओर चल पड़े। आपका विचार था कि दिल्ली पहुँचने से पहले अधिक से अधिक स्थानों पर जाकर लोगों को यह बता दिया जाय कि सब रक्षक और संहारक केवल एक निरंकार है। यदि वह रक्षा करता है तो कोई मार नहीं सकता और जिसे वह मारता हैं उसे कोई व्यक्ति बचा नहीं सकता। इसलिए किसी बड़े से बड़े शक्तिशाली और अत्याचारी व्यक्ति से डरना नहीं चाहिए। फिर जो होनहार है वह डरने और रोने से नहीं टल सकती। वीर पुरुषों की भांति आपत्ति का सामना करना मनुष्य का कर्त्तव्य है।

फिर जो बात आगे-पीछे अवश्य होने वाली है उसका भय क्यों रखा जाय? मनुष्य का सारा जीवन एक लम्बा संघर्ष है। जो शक्तिहीन होता है वह लड़ नहीं सकता। निस्सन्देह यह शक्ति समर्थ और बलवान भुजाओं में होती है पर इसके पीछे शक्तिशाली हृदय का होना आवश्यक है। हृदय की शक्ति नाम स्मरण और धर्म की कमाई के द्वारा प्राप्त होती है। शरीर के भीतर बलवान हृदय बनाने के लिए सृष्टि निर्माता प्रभु का आश्रय लेना चाहिए तथा निर्भय एवं निर वैर रहकर संसार में विचरना चाहिए।

सत्गुरू जी इस प्रकार दृढ़ जीवन जीने की प्रेरणा देते हुए लगभग २ वर्ष पजाब तथा दिल्ली के इर्द गिर्द अनेक स्थानों पर

जाते रहे। आप को इस बात का निश्चय था कि उनको शहीद अवश्य किया जायगा। इसलिए आपका विचार था कि लोगों में जाग्रति उत्पन्न कर दी जाय, ताकि जिस सत्याग्रह का प्रारम्भ आप बन रहे थे लोग उसके लिए तैयार हो जाएं। हर शस्त्र के प्रयोग के लिये उसका अभ्यास आवश्यक होता है। सत्गुरू लोगों को सत्याग्रही बनाना चाहते थे और इसके लिए मनुष्य को निर्भय और निरवैर होना आवश्यक था। इस शिक्षा को सत्गुरू जी दो वर्ष तक लोगों को देते रहे। अन्त में आगरे से पकड़ कर गुरू जी को दिल्ली लाया गया और उन्हें बन्द किया गया। इसके पश्चात् मुगल हकूमत की ओर से उन्हें अनेक कष्ट दिये गए और उनके देखते देखते भाई मतिदास को आरे से चीर दिया गया और भाई दयाला जी को पानी के अन्दर उबाल देने के बाद सत्गुरू तेगबहादुर जी को मगहर सुदी चौथ सन् १६७५ के दिन तलवार के प्रहार द्वारा शहीद कर दिया गया। इसका वर्णन करते हुए श्री गुरू गोबिन्द सिंह जी लिखते हैं कि जब यह करुण घटनाघटित हुई तब-

है है है सब जग भयो
जै जै जै सुरलोक।"

अर्थात् सारे जगत में हाहाकार मच गया और 'देव लोक' में जय गुरू तेगबहादुर, जय गुरू तेगबहादुर का घोष हुआ, श्री गुरू दशमेश जी का यह कथन पूर्णत: सार्थक है।

श्री गुरू तेगबहादुर जी समस्त पीड़ित जनता का एक बड़ा सहारा तथा हिन्दू सभ्यता के महान रक्षक थे। काश्मीरी ब्राह्मणों का अन्य सब द्वारों को छोड़ कर हिन्दू धर्म की रक्षा के लिए गुरू के दरबार में पुकार करना ही इस बात का बड़ा प्रमाण है। हिन्दू

जनता के लिए गुरू जी का अस्तित्व उस स्तम्भ के समान था था जिसके सहारे उनका जातीय भवन खड़ा था । उनके लिए गुरू जी का होना ऐसा था -

"जियुं मन्दिर को थामे थमन ।"

और जब गुरू जी को शहीद कर दिया गया तब उनका वह स्तम्भ गिर गया जिसके सहारे उनका धर्म-मन्दिर खड़ा था। जिन गुरू जी के शहीद होने पर पीड़ित जगत में हाहाकार मच गया, "है है सब जग भयो ।"

मनुष्य की दृष्टि की सीमा बहुत छोटी होती है, वह पारदर्शक नहीं। मनुष्य नहीं जान सकता कि भगवान के काम कितने रहस्यपूर्ण हैं— किसी घटित बात में घटना का भविष्य क्या है-

"क्या जाणु क्या होयगा री भाई ?

इसीलिए मनुष्य घबराता, विचलित होता है और शोक-प्रवाह में बह जाता है। ऐसे ही गुरू जी के शहीद होजाने से लोग चिन्तातुर होकर डगमगाने लगे और हाहाकार करने लगे। परन्तु सुरलोक में तथा पारदर्शक दृष्टि रखने वाले बुद्धिमान ज्ञानी लोगों को हर्ष हुआ और उन्होंने फतह (जयजयकार) का घोष किया। उनकी दूर-दृष्टि ने देख लिया था कि सतगुरू तेगबहादुर जी के पवित्र रक्त में से अति पवित्र भगवती प्रकाशमान होगी जो समस्त अत्याचारियों को भयभीत कर देगी। इसमें सन्देह नहीं कि सत्गुरू जी के शहीद होने पर अत्याचारियों को अपने भारी अपराध के फलस्वरूप अपना अन्तकाल निकट दिखाई दिया। इसके २४ वर्ष बाद अर्थात् सन् १६९९ में बैसाखी के दिन यह भगवती गुरू गोबिन्द-सिंह के हाथ में चमकी और जिसने अत्याचारियों का नामो निशान मिटा दिया।

आइये इस घटना का ऐतिहासिक रूप देखिये। गुरू तेगबहादुर जी को सन् १६७५ में शहीद किया गया। यह बकाले के महान तपस्वी, नामरसिक, त्यागी, दुखियों के कष्ट को दूर करने वाले, ब्रह्मज्ञानी सत्गुरू की शहीदी थी। इस शहीदी पर भारत की समस्त दुखी हिन्दू-मुस्लिम जनता ने हाहाकार किया था। समूची जनता की आवाज ने अत्याचारी हकूमत को भयभीत कर दिया इस शहीदी ने बाल्यावस्था के गोविन्द राय को यह विश्वास दिया कि "बल होआ बन्धन छुटै सब कुछ होत उपाय।" इस विश्वास से सन् १६६६ में पैदा हुए खालसा की चरण-शरण में आने वाले बन्दा सिंह बहादुर ने सन् १७१०–१७११ में मुगल सम्राट को पंगु एवं अशक्त बना दिया। ५०-६० वर्ष और बीतने पर मुगल हकूमत का अन्त हो गया। सन् १७६६ में शेरे पंजाब रणजीत-सिंह के नेतृत्व में लोक–राज्य स्थापित हुआ और हिन्द तंत्र का वह स्तम्भ जो गुरू तेगबहादुर की शहीदी के साथ लोगों को गिरता दिखाई दिया था,

"है है सब जग भयो"

वह स्तम्भ केवल हिन्दू तन्त्र के लिए नहीं बल्कि लोक-तन्त्र के स्तम्भ के रूप में हिमालय तक बढ़ा और लोगों को निश्चय हो गया कि गुरू तेगबहादुर यथार्थ रूप में भारतीय जाति के स्तम्भ थे और रहेंगे। इसीलिए सत्गुरू गोविन्द सिंह ने व्याख्यान किया था कि गुरू तेगबहादुर जी की शहीदी पर स्वर्गीय आत्माओं ने सामूहिक रूप में जयजयकार किया था। सत्य है कि शहीद का रक्त कभी निष्फल नहीं जाता।

गुरू तेग बहादुर सिमरीए
घर नौ निधि आवै धाए।"

अनुपम बलिदान

यह ट्रैक्ट मुफत बांटने की सेवा निम्नलिखित संस्थाओं और प्रेमीयों की ओर से की गई।

१. गुरुद्वारा प्रबन्धक कमेटी वारानसी।
२. गुरमति प्रचार सभा डेहरादून।
३. गुरु नानक पब्लिक इन्टर कालिज, डेहरादून।
४. स्त्री सतसंग सभा, करनपुर (डेहरादून)।
५. गुरदवारा प्रबन्धक कमेटी, गुरदवारा रोड़, धनबाद।
६. श्री गुरु कलगीधर सेवक जथा, बीकानेर।
७. सिक्ख कलचरल मिशन गुरदवारा कैलड १५-सी चन्डीगढ़।
८. श्री गुरु सिंघ सभा पटियाला।
९. श्री सुखमनी सतसंग दरबार, गवालियर।
१०. गुरु नानक सिक्ख संगत लोहर डागा, रांची।
११. दिल्ली सिक्ख गुरदवारा बोर्ड, चांदनी चौंक दिल्ली।
१२. सरदार तिरलोचन सिंह, प्रेम नगर डेहरादून।
१३. सिंघ साहिब बाबा हजूरा सिंह जी गु: श्री अकाल बुन्गा गुरमति विद्यालय रेशम माजरी।
१४. स. बालक सिंह जी गोबिन्द नगर, डेहरादून।
१५. स. शमशेर सिंह जी जांयट डायरैक्ट्र (Rtd.) श्री गंगा नगर।

प्रकाशक :
गुरु नानक मिशन
स. नरायण सिंह सकत्तर

पहली बार :
3000 कापी
दिसम्बर 1972

मुद्रक :
फुलकियां प्रैस,
पटियाला।